शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

# राजस्थान में जल संरक्षण की पारंपरिक संरचनाएँ

डॉ.रेखा गुप्ता
सीनियर रिसर्च फेलो
आईसीएसएसआर, दिल्ली
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर, राजस्थान, भारत

## शोध संक्षेप

*जल प्रकृति की अलभ्य व अनुपम संजीवनी संपदा है जिसकी हर बूंद में प्राणदायिनी शक्ति है। जहाँ जल है वहाँ जीवन है, प्राण हैं, स्पंदन है, गति है, सृष्टि है। जल जनजीवन का मूलाधार है। राजस्थान में प्राप्त प्राचीन शिलालेखों व प्रशस्तियों में विभिन्न जल स्रोतों के निर्माण व जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है। जलस्रोतों से सम्बन्धित शिलालेख तालाबों व बावड़ियों के समीप गढ़ी हुई शिलाओं पर बहुतायत में प्राप्त हुए।हैंमारवाड़ में विभिन्न शासकों के द्वारा समय-समय पर अनेक जल स्रोतों का निर्माण करवाया गया तथा जल संकट को दूर करने के भागीरथ प्रयास किये गए। राजस्थान और देश के विभिन्न भागों में जल संकट को दूर करने हेतु जल संरक्षण की सदियों से चली आ रही परंपरागत विधियों को पुनः उपयोग में लाने की आवश्यकता है। कुँओं, बावड़ियों, तालाबों और झीलों के पुनरुद्धार के साथ-साथ पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित जल संरक्षण की परंपरागत विधियों, नाड़ी, टोबा, खड़ीन आदि को पुनः प्रचलित करना आवश्यक है।*

**मुख्य शब्द** : *जल संरक्षण, मारवाड़, शिलालेख, नाड़ी, टोबा, बावड़ी*

## प्रस्तावना

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव शरीर पञ्च तत्त्वों से निर्मित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। इन पञ्च तत्त्वों में विधाता की प्रथम सृष्टि जल है। जल प्रकृति की अलभ्य और अनुपम संजीवनी संपदा है, जिसकी हर बूंद में प्राणदायिनी शक्ति है। जहाँ जल है वहाँ जीवन है, प्राण है, स्पंदन है, गति है, सृष्टि है। जल जनजीवन का मूलाधार है। जहाँ जल नहीं है वहाँ जीवन भी नहीं है। जल के बिना सम्पूर्ण प्रकृति निष्प्राण और निश्चेष्ट है। अतः भारतीय संस्कृति में जल को 'देवता' कहा गया है। प्राचीन काल से ही जल का महत्त्व वैदिक व लौकिक साहित्य में वर्णित है। वेदों में जल को 'आप' कहा गया है, जो बहुवचनान्त है। उपनिषदों के अनुसार जल भृगु व अंगिरा इन सूक्ष्म तत्त्वों का संघात है। भृगु 'सोम' तथा 'अंगिरा' अग्नि का रूप है। 'आपो भृग्वंगिरो रुपमापो भृग्वंगिरोमय। विज्ञान के अनुसार भी जल हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन ($H_20$) से मिलकर बनता है। महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मंगलाचरण में सबसे पहले अष्ट शिव के जलस्वरूप की स्तुति कर जल की महत्ता व उपयोगिता दर्शाई गई है। 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या'।

जल के महत्त्व तथा जीवन के लिए अत्यावश्यक होने के कारण प्राचीन काल से ही भारतीय शासक नहर, तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ जलाशय इत्यादि के निर्माण का दायित्व वहन करते आये थे। राजस्थान से

प्राप्त प्राचीन शिलालेखों व प्रशस्तियों में भीविभिन्न जल स्रोतों के निर्माण और जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है। जलस्रोतों से सम्बन्धित शिलालेख तालाबों व बावड़ियों के समीप गढ़ी हुई शिलाओं पर बहुतायत में प्राप्त हुए हैं यथा जोधपुर नगर के निकट मण्डोर नामक स्थान के पहाड़ी ढाल में एक बावड़ी है। जिसमें आयताकार शिलाभाग पर 685 ई. का एक शिलालेख उत्कीर्ण है। इसे बनवाने वाले चणक के पुत्र माधू ब्राहमण की सूचना प्राप्त होती है।"[1] सिरोही के बसंतगढ़ की लाहण बाबड़ी से प्राप्त शिलालेख के अनुसार इस बाबड़ी का निर्माण 1042 ई. में लाहिणी नामक रानी ने परोपकार व पुण्यार्थ करवाया था।"[2] पाली जिले के बाली के बोलामाता मन्दिर के सभा मण्डप के एक पाषाण स्तम्भ पर 1143 ई. का लेख उत्कीर्ण है।"[3] इस छः पंक्तियों वाले लेख में नागरी लिपि व संस्कृत भाषा प्रयुक्त की गई है। यह लेख महाराजाधिराज जयसिंहदेव के काल का है। इसमें देवी पूजन निमित्त प्रत्येक अरहट से एक-एक द्रम्म दिये जाने का आदेश दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि अरहट जैसे कृत्रिम जलीय साधन भी प्रयुक्त किये जाते थे। आबू के देलवाडा गाँव के नेमिनाथ मंदिर से प्राप्त 1230 ई. की प्रशस्ति में शासक तेजपाल व उसके भाई वास्तुपाल के द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में बावड़ियों, तालाबों, कुओं आदि के निर्माण व जीर्णोद्धार का उल्लेख किया गया है।"[4] जोधपुर के समीप बुरडा गांव की बावड़ी में 1283 ई. का एक शिलालेख लगा हुआ था। इस लेख में संस्कृत भाषा में 19 पंक्तियां हैं।"[5] जिससे ज्ञात होता है कि इस बाबड़ी का निर्माण रूपा देवी ने करवाया था। यह लेख तत्कालीन युग में स्त्रियों के अधिकारों की जानकारी देता है। राजकुमारियाँ व रानियाँ भी जनहित संपादन के लिए बावडियों, सरोवरों, कूपों आदि का निर्माण करवाती थीं।

वि.सं. 1597 का हीराबाड़ी जोधपुर का लेख राव मालदेव के समय का है। इस लेख में बावड़ी निर्माण तथा उसमें होने वाले संपूर्ण खर्च का ब्यौरा है। इस लेख के अनुसार बावड़ी के निर्माण कार्य में 151 कारीगर एवं 171 पुरुष और 221 स्त्रियां मजदूर लगाए गए थे तथा बावड़ी के निर्माण में 1,21,111 फदिये का खर्च हुआ था। उस समय फक्खे का मूल्य दो आने के बराबर था। इस लेख में बावली बनाने में जो सामान लगा, उसकी सूची भी दी गई है। जैसे 15 मन सूत, 520 मन लोहा, 321 गाड़ियां, 25 मन घी, 121 मन सन, 221 मन पोस्त, 721 मन नमक, 2555 मन गेहूं, 11121 मन दूसरे अनाज और मन भर अफीम।"[6] बीकानेर से 15 मील पश्चिम में कोडमदेसर नामक गाँव के एक स्तम्भ पर 1459 ई. भाद्रपद शुक्ल सोमवार का लेख है।"[7] यह लेख कोडमदेसर, जोधपुर तालाब के तट पर स्थापित कीर्ति स्तंभ पर अंकित है। इस लेख से प्रमाणित होता है कि राव जोधा की माता कोडम दे इसी तालाब के तट पर सती हुई थी। राव रणमल्ल के पुत्र राव जोधा ने तालाब का निर्माण करवाया और अपनी माता कोडम दे की स्मृति में कीर्ति स्तंभ की स्थापना करवाई। बीकानेर के कोलायत तीर्थ स्थल से प्राप्त लेख में उस समय के महाराज सुजानसिंह के द्वारा कपिल तीर्थ पर घाट के निर्माण कराए जाने का उल्लेख है। इसमें संस्कृत में 12 पंक्तियाँ हैं।"[8] इस प्रकार मारवाड़ में विभिन्न शासकों के द्वारा समय-समय पर अनेक जल स्रोतों का निर्माण करवाया गया तथा जल संकट को दूर करने के भागीरथ प्रयास किये गए

## परम्परागत जल संग्रहण की संरचनाएँ

भारत में प्राचीनकाल से ही जल संरक्षण व जलसंग्रहण की परम्परा रही है। प्राचीन अभिलेखों से भी जल संग्रहण व प्रबंधन का ज्ञान होता है। पौराणिक ग्रन्थों, जैन तथा बौद्ध साहित्य में नहरों, तालाबों, बांधों,

कुओं और झीलों का विवरण मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी जलप्रबंधन का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के जूनागढ़ अभिलेख में सुदर्शन झील के निर्माण का विवरण प्राप्त है। राजस्थान में भी जल संरक्षण की परम्परागत प्रणालियाँ स्तरीय है। यहाँ जल संचय की परम्परा सामाजिक ढाँचे से जुड़ी हुई हैं। जल स्रोतों को पूजा जाता है। राजस्थान में भी मारवाड प्रदेश में पानी की समस्या विशेष रूप से भीषण रही है। जल की दुर्लभता के कारण ही इस प्रदेश को 'मरु प्रदेश' कहा जाता है। मारवाड़ में वर्षा बहुत कम मात्रा में होती है इसलिए यहाँ वर्ष भर बहने वाली नदियाँ नहीं हैं। अतः मारवाड़ की संस्कृति में पानी के अनमोल महत्त्व को निम्न पंक्तियों में बताया गया है :

"घी ढुल्यां म्हारा की नीं जासी, पानी ढुल्यां म्हारों जी बले।"

सदियों से मारवाड़ के लोग जल के लिए संघर्ष करते आये हैं, अतएव यहाँ के शासकों व निवासियों ने जलसंचयन व संग्रहण की ऐसी अनोखी प्रणालियों का आविष्कार किया जो आज भी प्रासंगिक हैं। राजस्थान में जल संग्रहण की परम्परागत संरचनाएँ निम्न हैं :

**नाडी** - यह एक प्रकार का पोखर है। जिसमें वर्षा का जल संचित किया जाता है। नाड़ी 3 से 12 मीटर गहरी होती है। इसका जल संग्रहण क्षेत्र 10 से 100 हेक्टेयर तक होता है, जिसे 'आगोर' कहते हैं। कच्ची नाड़ी के विकास से भूमिगत जलस्तर में वृद्धि होती है। पश्चिमी राजस्थान में सामान्यतया नाड़ी का निर्माण किया जाता है। यह विशेषकर जोधपुर की तरफ होती है। 1520 ई. में राव जोधाजी ने सर्वप्रथम एक नाड़ी का निर्माण करवाया था। नागौर, बाड़मेर व जैसलमेर में पानी की कुछ आवश्यकता का 38 प्रतिशत पानी नाड़ी द्वारा पूरा किया जाता है।"[9]

**खडीन** - यह जल संग्रहण की पारंपरिक विधि है। 15 वीं सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा इसकी शुरूआत हुई। खडीन मिट्टी का बांधनुमा अस्थायी तालाब होता है जिसे ढाल वाली भूमि के नीचे बनाया जाता है। इसके दो तरफ पाल उठाकर और तीसरी ओर पत्थर की दीवार बनाकर पानी रोका जाता है। खडीन तकनीक द्वारा बंजर भूमि को भी कृषि योग्य बनाया जाता है। खडीनों में बहकर आने वाला जल अपने साथ उर्वरक मिट्टी बहाकर लाता है। यह 15वीं सदी की तकनीक है। जिससे उपज अच्छी होती है। खडीन पायतान क्षेत्र में पशु चरते हैं, जिससे पशुओं द्वारा विसरित गोबर मृदा (भूमि) को उपजाऊ बनाता है। खडीनों के नीचे ढलान में कुआँ भी बनाया जाता है, जिसमें खडीन से रिस कर पानी आता रहता है, जो पीने के उपयोग में आता है।"[10]

**टाँका / कुंड** - रेगिस्तानी क्षेत्रों में वर्षा के जल संग्रहण की पारंपरिक विधि है। इसका निर्माण शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में किया जाता है। इसमें संगृहीत जल का उपयोग मुख्यतः पेय जल के रूप में किया जाता है। टांका राजस्थान के रेतीले क्षेत्र में वर्षा जल को संगृहीत करने की महत्त्वपूर्ण परम्परागत प्रणाली है। इसे कुंड भी कहते हैं। यह सूक्ष्म भूमिगत सरोवर होता है। जिसे ऊपर से ढँक दिया जाता है। टाँका किलों, तलहटी, घरों की छत, आंगन तथा खेत आदि में बनाया जाता है। कुंड या टांके का निर्माण जमीन या चबूतरे के ढलान के हिसाब से किया जाता है। जिस आंगन में वर्षा का जल संगृहीत किया जाता है, उसे आगोर या पायतान कहते हैं। जिसका अर्थ बटोरना है। पायतान को साफ रखा जाता है, क्योंकि उसी से बहकर पानी टांके में जाता है। टांके के मुहाने पर इंडु (सुराख) होता है, जिसके ऊपर जाली लगी रहती है, ताकि कचरा नहीं जा सके। टांका चाहे छोटा हो या बडा उसको ढंककर रखते हैं।

पायतान का तल पानी के साथ कटकर नहीं जाए, इस हेतु उसको राख, बजरी व मोरम से लीप कर रखते हैं। पानी निकालने के लिए सीढ़ियों का प्रयोग किया जाता है। ऊपर मीनारनुमा ढेकली बनाई जाती है जिससे पानी खींचकर निकाला जाता है। खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर टांकें या कुण्डियाँ बनाई जाती हैं। वर्तमान में रेन वाटर हार्वेस्टिंग इसी का परिष्कृत रूप है।"[11]

**झालरा** - झालरा अपने से ऊँचे तालाबों और झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वयं का कोई आगोर (पायतान) नहीं होता है। झालराओं का पानी पीने हेतु नहीं, बल्कि धार्मिक रिवाजों तथा सामूहिक स्नान आदि कार्यों के उपयोग में आता था। इनका आकार आयताकार होता है। इनके तीन ओर सीढ़ियाँ बनी होती थी। सन 1660 ई. में निर्मित जोधपुर का महामंदिर झालरा प्रसिद्ध है।"[12]

**टोबा / जोहड** - टोबा या जोहड़ एक महत्त्वपूर्ण परम्परागत जल प्रबंधन है, यह नाड़ी के समान आकृति वाला होता है। यह नाड़ी से अधिक गहरा होता है। इसलिए रेगिस्तान में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सघन संरचना वाली भूमि, जिसमें पानी का रिसाव कम होता है, टोबा निर्माण के लिए यह उपयुक्त स्थान माना जाता है। टोबा की पाल पत्थरों से बनाई जाती है। पानी में उतरने के लिए घाट एवं सीढियाँ होती है। टोबे का पानी पशुओं के पीने के काम आता है। इनमें पानी सात-आठ माह तक टिकताहै।"[13]

**तालाब** - पानी का आवक क्षेत्र विशाल हो तथा पानी रोक लेने की जगह भी अधिक मिल जाए तो ऐसी संरचना को तालाब या सरोवर कहते हैं। तालाब नाड़ी की अपेक्षा और अधिक क्षेत्र में फैला हुआ रहता है तथा कम गहराई वाला होता है। तालाब प्रायः पहाडियों के जल का संरक्षण करके ऐसे स्थल पर बनाया जाता है जहाँ जल भंडारण की संभावना हो।"[14]

**बावडी / वापिका** - बावड़ी से तात्पर्य एक विशेष प्रकार के जल स्थापत्य से है। यह एक सीढ़ीदार वृहद् कुँआ होता है, जिसमें एक से अधिक मंजिल होती है। बावड़ी चतुष्कोणीय, गोल, वर्तुल तथा दीर्घ होती है। इसमें वर्षा जल के संग्रहण के साथ भूमिगत जल का संग्रहण भी होता था। जिसका उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता था। बावड़ियों का निर्माण अधिकतर नगर द्वार के बाहर, मंदिरों, सराय अथवा धर्मशालाओं के पास किया जाता था, जिससे इन मार्गों पर आने-जाने वाले लोगों के माध्यम से विभिन्न सूचनाएँ भी प्राप्त की जाती थीं तथा यात्रीगण भी वहाँ रुककर स्नान, पूजा, भोजन कर सकते थे।"[15]

**बेरी (छोटी कुई)** - कुई या बेरी सामान्यत: तालाब के पास बनाई जाती है, जिसमें तालाब का पानी रिसता हुआ जमा होता है। जिससे पानी व्यर्थ नहीं होता था। यह दस से बारह मीटर गहरी तथा कच्ची होती है। कुई का मुँह संकरा तथा ढँक कर रखा जाता है, जिससे पानी का वाष्पीकरण कम हो। जब तालाब का पानी ख़त्म हो जाता है तब कुई का पानी काम में लिया जाता है। पश्चिमी राजस्थान में इनकी अधिक संख्या है।"[16]

**झीलें** - राजस्थान में झीलों में जल का सर्वाधिक संचयन किया जाता है। यहाँ के शासकों ने आम जनता के सहयोग से झीलों का निर्माण करवाया है। झीलों की क्षमता का अनुमान जोधपुर की लाल सागर, कायलाना, तख़्त सागर और उम्मेदसागर झीलों की विशालता से लगाया जा सकता है। इन झीलों में इतना पानी संचित रहता है कि उससे वर्ष में आठ माह तक जलापूर्ति की जा सकती है। जोधपुर की मंडोर पहाड़ियों के जल को संचित करने हेतु बालसमंद झील का निर्माण किया गया। इन झीलों से

सिंचाई हेतु भी जल प्राप्त किया जाता है। इन झीलों का पानी रिसता हुआ बावड़ियों में पहुँचता है और पेयजल के रूप में काम आता है।"[17]

**कुँए** - राजस्थान में कुओं का भी जल स्रोत के रूप में अत्यधिक महत्त्व है। यहाँ पर कच्चे-पक्के दोनों प्रकार के कुँए पाए जाते हैं। इन की गहराई साठ फीट से तीन सौ फीट तक होती है। कुओं का पानी पीने तथा सिंचाई दोनों में काम में लाया जाता है।"[18]

## परम्परागत जल संग्रहण संरचनाओं की प्रासंगिकता

वर्तमान में प्रकृति के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरण असंतुलन की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। जिससे शुद्ध पेयजल की उपलब्धता न्यून होती जा रही है। सम्पूर्ण विश्व में पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित्त करने हेतु गहन चिंतन मनन जारी है। जल संरक्षण व संचयन के नए उपाय प्रयोग में लाने के प्रयास किये जा रहे हैं, किन्तु कई बार सुदूर क्षेत्रों में तकनीकी, भौगोलिक व अन्य कारणों से आधुनिक प्रयास या तो वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाते हैं या उनका क्रियान्वयन सफल नहीं हो पाता है। ऐसे स्थानों पर जल संचयन की परंपरागत विधियों को अपनाकर जल की समस्या का निदान किया जा सकता है। इन परंपरागत संसाधनों की वर्तमान प्रासंगिकता व उपयोगिता इस बात से सिद्ध होती है कि राजस्थान में मारवाड़ के नागौर जिले में गाँवों के लोग आज भी घरों में टांका बनवाते हैं और उनमें वर्षा जल एकत्रित कर वर्ष भर उपयोग में लेते हैं। यहाँ ग्रामीणों ने तक़रीबन एक लाख लीटर तक की क्षमता वाले टांके बना रखे हैं। नागौर शहर से दस किलोमीटर दूरी पर स्थित साईं जी महाराज का टांका वर्षा जल सरंक्षण की मिसाल है। इस मंदिर परिसर में छः टांके बने हुए हैं जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक टांका भरने के बाद पानी अपने आप दूसरे टाँके में चला जाता है। यहाँ के ग्रामीणों ने इससे प्रेरित होकर वर्षा जल संरक्षण हेतु अपने अपने घरों तथा खेतों में टांके का निर्माण करा लिया है।"[19] अतएव राजस्थान व देश के विभिन्न भागों में जल संकट से उबरने हेतु जल संरक्षण की सदियों से चली आ रही परम्परागत विधियों को पुनः उपयोग में लाने की आवश्यकता है। कुँओं, बावडियों, तालाबों, झीलों के पुनरूद्धार के साथ-साथ पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित जल संरक्षण की परंपरागत विधियों नाड़ी, टोबा, खड़ीन, टांका या कुण्डी, कुँई आदि को प्रचलित करना आवश्यक है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

*1 राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग-1, गोपीनाथ शर्मा, पृष्ठ 50*

*2 वही, पृष्ठ 71*

*3 वही, पृष्ठ 83*

*4 वही, पृष्ठ 103*

*5 वही, पृष्ठ 115*

*6 मारवाड़ का इतिहास, भाग-1, विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृष्ठ 117-118*

*7 बीकानेर राज्य का इतिहास भाग-1, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ 51*

*8 वही, पृष्ठ 52*

*9 जल संसाधन भूगोल, रामकुमार गुर्जर, बी.सी. जाट, पृष्ठ 281*

*10 वही, पृष्ठ 289*

*11 हाडौती की जल संस्कृति, अनुकृति उज्जैनिया, पृष्ठ 102-103*

*12 जल संसाधन भूगोल, रामकुमार गुर्जर, बी.सी. जाट, पृष्ठ 283*

*13 वही, पृष्ठ 284*

*14 वही, पृष्ठ 281*

*15 हाडौती की जल संस्कृति, अनुकृति उज्जैनिया, पृष्ठ 111*

*16 वही, पृष्ठ 113*

*17 वही, पृष्ठ 109*

*18 वही, पृष्ठ 111*

*19 राजस्थान पत्रिका, पृष्ठ 13, दिनांक 23/08/2023*